THE TIMES OF INDIA

Date:23-02-22

Wrong Call

PIL on enforcing fundamental duties shouldn't have been entertained by SC. Making laws is Parliament's job

TOI Editorials

The Supreme Court is hearing a PIL that seeks to legally enforce fundamental duties and has issued notice to the Centre and states. But this PIL should have been junked at the admission stage itself. Lawmaking is Parliament's and the political executive's arena. SC, already burdened with huge pendency of cases, shouldn't be sidetracked into other domains. Fundamental duties were a late entrant to the Constitution. They were inserted in 1976 during the Emergency as Part IVA with 10 fundamental duties and an 11th (duty of parents to ensure education of their children between ages 6 and 14) was added in 2002.

If the Constitution's Directive Principles of State Policy hope to influence government policies, its fundamental duties are in the form of general directives to citizens to display some "ideal" conduct in their public lives. Creating a framework to legally enforce them would be a sort of umbrella legislation covering areas as diverse as environment, education, national security, heritage conservation, communal harmony, scientific temper, respecting national institutions and symbols. The point about such a law is that it would be prone to huge abuse and politicisation. Plus, there are many laws like Prevention of Insults to National Honour Act, IPC 124A, Contempt of Courts Act, Environmental Protection Act, Ancient Monuments and Archaeological Remains Act, Right to Education Act that already cover some of the fundamental duties.

Parliament enacted each of these Acts when the need arose. Courts' job is to interpret these laws. For example, GoI is within its rights to table a law requiring national service, the opposition can question it, various media outlets can critique or support it, and doubtless there will be diverse public opinions on it. Courts' job is only to interpret such a law, if it is passed. PILs are a double-edged sword. Judiciary must entertain only those PILs where it fears immense harm to public interest owing to inaction by governments and institutions.

दैनिक भास्कर

Date:23-02-22

डिजिटल गुलामी की ओर ले जा रही आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस

राजीव मल्होत्रा, (लेखक और विचारक)

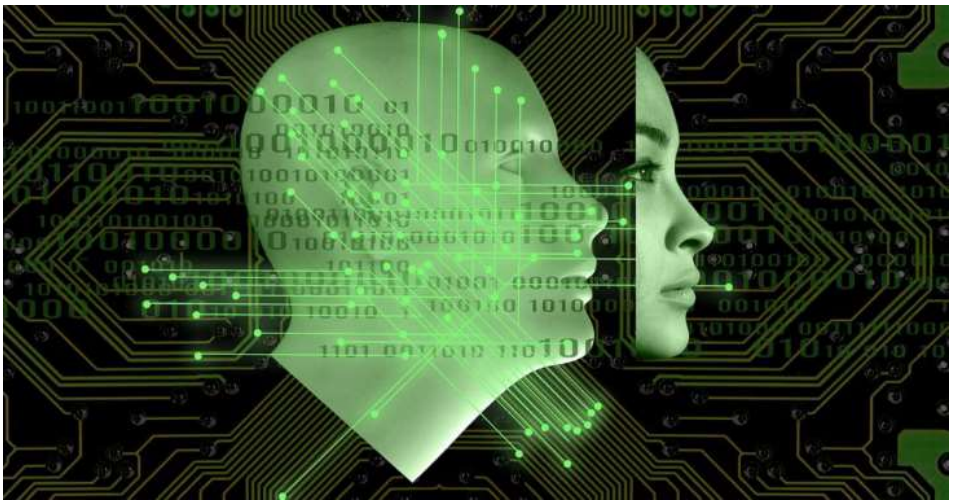

आज के दौर में आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस (एआई) तकनीक, शोध की एक नई शक्ति के रूप में नया जन्म ले चुकी है। यह मनुष्य की चतुरता और आविष्कारशीलता में वृद्धि कर रही है। यह एक तरह से वो इंजन बन चुकी है जो आधुनिक तकनीकी परिवर्तनों को चला रही है और उनके द्वारा चुपके से समाज की नींव को झकझोर रही है। जब मैं एआई कहता हूं, तो मेरा तात्पर्य केवल तकनीकी तौर पर समझे जाने वाले इस शब्द के सीमित अर्थ से नहीं है। मैं एआई के अंतर्गत उन सभी प्रौद्योगिकियों के संपूर्ण परितंत्र को सम्मिलित करता हूं जिन्हें एआई विकसित करते हुए आगे बढ़ा रही है। इस पूरी व्यवस्था में क्वान्टम कंप्यूटिंग, सेमीकंडक्टर, नैनोटेक्नॉलजी, चिकित्सा क्षेत्र से जुड़ी तकनीकें, ब्रेन-मशीन इंटरफेस, रोबोटिक्स, एयरोस्पेस, 5जी और इस तरह के अन्य क्षेत्र शामिल हैं।

एक ओर एआई तकनीक एक कल्पवृक्ष के समान है, जिससे लोग अपने जीवन की हर समस्या का समाधान पाने की आशा रखते हैं। वहीं दूसरी ओर इसका घातक पक्ष भी है। ये प्रकृति और समाज के कई नाजुक संतुलनों को अस्त-व्यस्त करते हुए, विभिन्न क्षेत्रों में टकराव भी पैदा कर रही है। एआई से होने वाले प्रभावों को हम भारतीय पांच युद्ध-क्षेत्रों के रूप में देखकर समझ सकते हैं। यह इनसे संबंधित हैं: 1. आर्थिक विकास व नौकरियों के लिए युद्ध 2. नई विश्व व्यवस्था में वर्चस्व के लिए युद्ध 3. इच्छाओं और स्वतंत्र-कर्तृत्व पर मनोवैज्ञानिक नियंत्रण के लिए युद्ध 4. अध्यात्मविज्ञान व उससे सम्बद्ध नैतिकता के लिए युद्ध 5. भारत के भविष्य के लिए युद्ध।

यह सभी युद्ध-क्षेत्र पहले से ही अस्तित्व में थे लेकिन अब एआई के शामिल हो जाने के बाद ये न केवल और भीषण हुए हैं बल्कि इनका स्वरूप भी बदलता जा रहा है। हर युद्ध-क्षेत्र में मौजूद संतुलन की व्यवस्था खंड-खंड हो रही है जिसके परिणाम-स्वरूप जिन पक्षों में पहले सामंजस्य हुआ करता था, उन सभी के बीच अब तनाव पैदा होता जा रहा है। हम असंतुलन के एक ऐसे युग में प्रवेश कर रहे हैं जिसमें अराजकता को आने से रोका नहीं जा सकता। परंतु अंत में एक नई साम्यावस्था की स्थापना होगी जिससे एक नए तरह के विश्व का उदय होगा।

इस समय एआई के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया दो विरोधी छोरों में से एक पर रहती है। कुछ आशावादी लोग एआई को जादुई टेक्नोलोजी के रूप में महिमामंडित करते हैं। वहीं दूसरे लोग उसे एक अशुभ टेक्नोलोजी के रूप में देखते हैं। ये दोनों ही छोर उन व्यावहारिक वास्तविकताओं की अनदेखी करते हैं जिनका हमें सामना करना है।

हमें ऐसी संस्थाएं और नियम चाहिए जो आर्थिक एकाधिकार और पर्यावरण के विनाश से हमें बचा सकें। हमें चर्चाओं और विचार-विमर्श की आवश्यकता है जो इस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में पहला कदम है। साथ ही हमें कंपनियों को

मिलने वाले अनुचित लाभ के खिलाफ जनता को जागरुक करना चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि इससे हमारी स्वतंत्रता-लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं और हमारे अपने समाज की अवधारणा प्रभावित होती है। सामाजिक विचारक और नेता निरंतर एआई को यह समझते हुए अपनाते जा रहे हैं कि वह किसी प्रौद्योगिकीय जन्नत का प्रवेश द्वार है। वे उन बैंड-बाजे वालों की तरह हैं जो तब भी टाइटैनिक जहाज के डेक पर अपनी धुनें बजाते रहे जब वो डूब रहा था। उनकी मिलीभगत को चुनौती देना आवश्यक है ताकि आम जनता को इस बात की झलक दिखाई जा सके कि एआई हमारे समाज की कमजोर नींव के लिए संभावित खतरा है।

नीति-निर्माताओं तथा उद्योगों और सार्वजनिक जीवन के अन्य नेताओं को निश्चय ही एआई के अनुयायियों के रूप में बर्ताव करना बंद करना चाहिए। एआई के आने से विश्व पर जो संकट उत्पन्न हो सकते हैं, उनके बारे में पर्याप्त नहीं लिखा गया। मेरा उद्देश्य इस एकतरफा चर्चा में कुछ संतुलन लाना है और एआई से सम्बंधित संघर्षों में पीड़ित व्यक्तियों की तरफ से बोलने वाले लोगों को सशक्त करना है।

जनसत्ता

Date:23-02-22

ई-शिक्षा के संकट

सुशील कुमार सिंह

शिक्षा का उद्देश्य उसे अधिक शिष्य केंद्रित, आनंदायक, प्रयोगात्मक व खोजोन्मुख बनाना होना चाहिए। शायद इसी की खोज हर शिक्षा नीति और हर तरीके के पाठ्यक्रम में कमोबेश होती रही है। पर शिक्षा और शिक्षण पद्धति को लेकर एक विचित्र विरोधाभास और दुविधा की स्थिति भी रही है। एक आदर्श और गुणकारी शिक्षा व्यवस्था में कौनसे तत्व शामिल होने चाहिए, इसे लेकर आजादी के पचहत्तर सालों में कोई एक निश्चित धारणा शायद ही बन पाई हो। नतीजन इस अनिश्चितता का भरपूर दंड हर नई पीढ़ी कमोबेश भुगतती रही है और अब कोविड-19 के इस दौर में बीते दो साल से आनलाइन शिक्षा तो मौजूदा पीढ़ी को एक नया सबक सिखा रही है जहां शिक्षा एक नए संघर्ष के साथ मानसिक संतुलन भी बरकरार रखने की कवायद लिए रही है।

मौजूदा वैश्विक महामारी के दौर में संचार, नेतृत्व और नीति-निर्माताओं, प्रशासन व समाज के बीच तालमेल के जरूरी तत्व के रूप में डिजिटल व्यवस्था की केंद्रीय भूमिका हो गई है। डिजिटल का यह दायरा कोविड-19 से संबंधित योजनाओं

के ज्यादा पारदर्शी, सुरक्षित और अंतर प्रचालनीय ढंग से प्रसार हेतु महत्त्वपूर्ण औजार बनते देखा जा सकता है, मगर संदर्भ कुछ इसके उलट भी रहे हैं। देखने को मिला है कि शिक्षा मंत्रालय को अभिभावकों की ओर से थोक में शिकायतें भी मिलीं, जिसमें बच्चों को विद्यालयों की ओर से घंटों आनलाइन पढ़ाया जाना, गृह कार्य के अनुपात को भी बरकरार रखना और दिन भर कंप्यूटर, लैपटाप और मोबाइल से बच्चों का चिपके रहना। जाहिर है, अनावश्यक व्यस्तता के चलते व्यवहार में बदलाव होना स्वाभाविक था। इससे सीखने की न केवल क्षमता घटी, बल्कि बच्चों में चिड़चिड़ापन भी आने लगा। हालांकि महामारी के समय शिक्षा को संभालने में ई-लर्निंग एक महत्त्वपूर्ण विकल्प के रूप में सामने आया। इसी की बदौलत कोरोनाकाल में लगभग पूरी शिक्षा व्यवस्था को बेपटरी होने से बचाए रखने में मदद मिली। गौरतलब है कि डिजिटल प्रौद्योगिकी के उभार ने शिक्षण विधियों, विश्वविद्यालयी प्रशासन प्रणालियों, उच्च शिक्षा संबंधी लक्ष्यों और भविष्य में स्थापित होने वाले विश्वविद्यालयों के संदर्भ में एक नया दृष्टिकोण अपनाने का अवसर भी दिया है। इसीलिए भारत सरकार ने वित्त वर्ष 2022-23 के बजट में डिजिटल विश्वविद्यालय खोलने का एलान किया।

जब भी सुशासन को कड़ीबद्ध करने का प्रयास किया जाता है तो इसमें यह सुनिश्चित करना भी शामिल रहता है कि लोक व्यवस्था की भरपाई में कोई कमी न रहे और लोक विकास को पूरा अवसर मिलता हो। ई-शिक्षा के माध्यम से क्या सभी को अवसर मिला, यह सवाल आज भी कहीं गया नहीं है। इसके अलावा शिक्षा, चिकित्सा, सड़क, बिजली, पानी सहित तमाम बुनियादी विकास व सतत विकास की धाराओं को भी मनचाहा मुकाम मिले, यह भी सुशासन का ही फलक है। महामारी के चलते सब कुछ सही रहे, इसकी कोशिश तो की जा सकती है, पर नतीजा मनमाफिक भी मिले हैं, इस पर संदेह है। डिजिटल इंडिया का प्रसार भारत में क्या उस पैमाने पर हुआ है जहां से सुशासन का गुणा-भाग समाप्त होता है।

वैसे डिजिटल इंडिया साल 2015 में प्रकट तो हुआ, मगर इसकी बुनियाद दशकों पुरानी है। दरअसल इसकी नींव तब पड़ी थी जब भारत सरकार ने 1970 में इलेक्ट्रानिक विभाग और 1977 में राष्ट्रीय सूचना केंद्र का गठन किया था। 1991 के उदारीकरण से देश एक नई धारा को ग्रहण कर रहा था जिसमें इलेक्ट्रानिक विन्यास भी इसका एक हिस्सा था। ई-क्रांति भले ही देर से आई, मगर इसका प्रसार दशकों पुराना है। साल 2006 में राष्ट्रीय ई-गवर्नेंस योजना के प्रकटीकरण ने दक्षता, पारदर्शिता और जवाबदेही को सुनिश्चित कर दिया। ई-शिक्षा इसी की एक कड़ी है जो कोरोना काल में आसमान छूने के लिए बेताब रही, मगर छलांग पूरी न पड़ी। गौरतलब है कि डिजिटलीकरण ई-शिक्षा का भी एक बहुत बड़ा औजार है। ई-शासन मौजूदा समय में एक नई करवट ले रहा है और विकास की जमीन अब डिजिटलीकरण से युक्त है, मगर एक सौ छत्तीस करोड़ आबादी वाले भारत में इंटरनेट का दायरा उस औसत में अभी भी नहीं है कि ई-शिक्षा के माध्यम से शिक्षा को पूरा मुकाम दिया जाए।

नेशनल सैंपल सर्वे से पता चलता है कि साल 2017-18 करीब बयालीस फीसद शहरी और पंद्रह प्रतिशत ग्रामीण परिवारों के पास ही इंटरनेट की सुविधा थी। मौजूदा समय में शहरी आबादी में सड़सठ फीसद और ग्रामीण में महज इकतीस फीसद तक इंटरनेट की पहुंच है। इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन आफ इंडिया के मुताबिक 2020 तक देश में इंटरनेट उपभोक्ताओं की संख्या करीब तिरसठ करोड़ थी। हालांकि 2025 तक यह नब्बे करोड़ के आंकड़े को छू जाने की उम्मीद है। इतना ही नहीं, भारत इंटरनेट की सुस्त रफ्तार की समस्या से भी परेशान है।

इस मामले में भारत एक सौ चौंतीस देशों की सूची में एक सौ उनतीसवें स्थान पर है जो पड़ोसी पाकिस्तान, श्रीलंका से भी पीछे है। कोरोना काल में इस मामले में भी सुधार तेजी से होता दिखाई तो दिया, मगर देश की ढाई लाख पंचायतें

और साढ़े छह लाख गांवों में शत-प्रतिशत इंटरनेट पहुंच कब बनेगी, इसका कोई अंदाजा नहीं है। हालांकि सरकारी नीतियों और बयानबाजियों में इसका सही जवाब मिल जाएगा। उससे स्पष्ट है कि विद्यार्थियों की एक बड़ी संख्या ई-शिक्षा से वंचित रह गई। पड़ताल यह बताती है कि देश में सभी तरह के यानी केंद्रीय, राज्य, डीम्ड और निजी सहित हजार से अधिक विश्वविद्यालय हैं। इसके अलावा चालीस हजार से अधिक महाविद्यालय भी हैं जहां से हर साल लगभग चार करोड़ छात्र स्नातक की डिग्री पाते हैं।

डिजिटलीकरण को कितने भी बड़े पैमाने पर व्यापक रूप दे दिया जाए, मगर अंतिम व्यक्ति तक इसका लाभ तभी पहुंच पाएगा जब यह कहीं अधिक सुलभ और सस्ता होगा। देखा जाए तो डिजिटल इंडिया, ई-लर्निंग के लिए करीब चार सौ करोड़ रुपए खर्च किए जाएंगे। शिक्षा के मापदंडों पर कई तकनीक आजमाई जा रही हैं और जिस तरह बीते दो वर्षों में शिक्षा क्षेत्र एक बड़े संघर्ष से जूझा है, उससे यह स्पष्ट हो चला है कि डिजिटल छलांग मौजूदा समय की पहली जरूरत बन गई है। सुशासन भी यही कहता है कि जो जनता को चाहिए, उसे उपलब्ध कराने में शासन को नहीं देर करनी चाहिए और न ही कोई मजबूरी जतानी चाहिए।

'सबके लिए डिजिटल शिक्षा' के लक्ष्य को हासिल करने के लिए बुनियादी शर्त यह है कि डिजिटल शिक्षा से जुड़ी आधारभूत संरचना का विकास तो किया ही जाए, साथ ही डिजिटल साक्षरता की दिशा में भी तेजी से कदम उठाए जाएं। अभी भारत में ई-शिक्षा अपनी शैशवावस्था में है। ई-शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए सरकार ने विभिन्न ई-लर्निंग कार्यक्रमों का समर्थन किया है। वैसे देखा जाए तो ई-शिक्षा को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। पहली श्रेणी के तहत एक ही समय में विद्यार्थी और शिक्षा अलग-अलग स्थानों से एक-दूसरे से शैक्षणिक संवाद करते हैं। इसमें आडियो और वीडियो कांफ्रेंसिंग, लाइव चैट और आभासी कक्षाएं शामिल हैं, जबकि दूसरी श्रेणी शैक्षणिक व्यवस्था में विद्यार्थी और शिक्षक के बीच संवाद करने का कोई विकल्प नहीं है। इसमें वेब आधारित अध्ययन होता है जिसमें विद्यार्थी किसी आनलाइन कोर्स, ब्लाग, वेबसाइट, वीडियो, ई-बुक आदि की मदद से शिक्षा प्राप्त करते हैं। ई-शिक्षा का माध्यम कुछ भी हो, लेकिन इसे फलक पर तभी पूरी तरह से लाया जा सकता है जब इस पर आने वाले खर्च को उठाना सहज हो। दो टूक यह भी है कि ई-शिक्षा भले ही तमाम फायदों से युक्त हो, मगर सेहत की दृष्टि से इसकी सीमा रहेगी। इतना ही नहीं कक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत किए जाने वाले अध्ययन में जिस प्रकार का व्यक्तित्व विकास संभव होता है, उसकी भी घोर कमी इसमें रहेगी।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:23-02-22

पूर्वी यूरोप में तनाव

संपादकीय

युद्ध भले ही अभी शुरू नहीं हुआ, लेकिन रूस और यूक्रेन की सीमाओं पर तनाव उस चरम पर पहुँच चुका है युद्ध भले ही अभी शुरू नहीं हुआ, लेकिन रूस और यूक्रेन की सीमाओं पर तनाव उस चरम पर पहुँच चुका है कि कभी भी जंग छिड़ने की खबर आ सकती है। भले ही संयुक्त राष्ट्र और उसके बाहर इस जंग को टालने की कोशिशें लगातार जारी हैं, लेकिन यूरोप के उस पूर्वी कोने में युद्ध की आशंका को दुनिया ने एक सच की तरह स्वीकार कर लिया है। यह मान लिया गया है कि रूस किसी भी समय यूक्रेन पर हमला कर सकता है। छिटपुट झड़पें तो शुरू भी हो गई हैं। भारत समेत दुनिया के तमाम देशों ने अपने-अपने नागरिकों को यूक्रेन से निकालने का काम शुरू कर दिया है। फ्रांस और जर्मनी जैसे देश अब भी बीच-बचाव की कोशिशों में लगे हैं, लेकिन अमेरिका और ब्रिटेन जैसे देश रूस को गंभीर नतीजे भुगतने की चेतावनी दे रहे हैं। अमेरिका ने तो रूस पर पाबंदियों की घोषणा भी शुरू कर दी है। ये लगभग वही स्थितियां हैं, जो आठ साल पहले इस इलाके में बनी थीं। तब रूस ने यूक्रेन के प्रायद्वीप क्रीमिया पर हमला बोला था और उसे अपना हिस्सा बना लिया था। इसे दूसरे विश्व युद्ध के बाद किसी जमीन पर किया गया सबसे बड़ा कब्जा कहा जाता है।

इस बार रूस वैसा ही कुछ यूक्रेन के दो इलाकों में करने जा रहा है। रूसी आबादी वाले इन इलाकों पर रूस समर्थक विद्रोहियों ने काफी समय से कब्जा किया हुआ है। वहां रूसी मुद्रा चलती है, वहां के लोगों के लिए रूसी पासपोर्ट जारी होते हैं। वहां के लोगों को रूस की कोविड वैक्सीन स्पूतनिक-वी भी लगाई गई है, जबकि यूक्रेन ने इस वैक्सीन का बहिष्कार कर रखा है। यानी, ये दोनों इलाके पूरी तरह से रूस के प्रभाव में ही हैं, लेकिन अब रूस ने इन इलाकों को बाकायदा मान्यता दे दी है और उसकी फौजें पूरी दुनिया के तमाम विरोध के बावजूद उस तरफ चल पड़ी हैं।

रूस और यूक्रेन के इस वैमनस्य की जड़ें दोनों देशों के इतिहास में भी हैं और उस मनोविज्ञान में भी, जिसे एक लंबे अतीत के अंतर्विरोधों ने पाल-पोसकर बड़ा किया है। जब सोवियत संघ था, तब रूस और यूक्रेन एक ही राजनीतिक इकाई के हिस्से थे। सोवियत संघ के विखंडन के बाद अलग हुआ यूक्रेन अब रूस की दादागिरी से मुक्त होने के लिए अक्सर छटपटाता दिखता है। जिस तरह से उसे क्रीमिया से हाथ धोना पड़ा, उसके बाद वह एक ऐसे विश्व समीकरण से जुड़ना चाहता है, जिसमें उसके लिए रूस के खिलाफ सुरक्षा का एक आश्वासन हो। इसके लिए वह अमेरिका और पश्चिम यूरोप के सैनिक खेमे नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन, यानी नाटो का सदस्य बनना चाहता है। यूक्रेन एक खुदमुख्तार देश है और इसलिए उसे अपनी विदेश नीति, अपने राजनीतिक समीकरण तय करने का पूरा हक होना ही चाहिए। लेकिन रूस यह किसी कीमत पर नहीं होने देना चाहता, क्योंकि इसका अर्थ होगा, रूस के सबसे बड़े दुश्मन नाटो का उसके दरवाजे तक पहंुच जाना। ताजा विवाद की जड़ यहीं पर है। यूक्रेन की एक बड़ी दिक्कत यह है कि उसकी आबादी में तकरीबन 18 फीसदी लोग रूसी मूल के हैं और यह कहा जाता है कि वे सब इसके विरोधी हैं कि यूक्रेन नाटो में शामिल हो, लेकिन पूरी दुनिया के लिए सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि रूस और यूक्रेन, दोनों ही परमाणु हथियार संपन्न देश हैं। उनका आपसी तनाव बहुत बड़ी समस्या खड़ी कर सकता है।

Date:23-02-22

कोई भी देश युद्ध नहीं चाहता

अरविंद गुप्ता, (डायरेक्टर, विवेकानंद इंटरनेशनल फाउंडेशन)

सोमवार को रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन ने यूक्रेन के दो विद्रोही इलाकों- लुहान्सक और दोनेत्स्क को स्वतंत्र देश की मान्यता दे दी। उन्होंने यह भी एलान किया कि रूस की सेनाएं इन इलाकों में शांति-सैनिक के रूप में भेजी जाएंगी। इन घोषणाओं के बाद रूस की सेनाओं को यूक्रेन में जाने का एक कारण मिल गया है।

ताजा घटनाक्रम से रूस और नाटो, रूस-यूक्रेन और रूस व यूरोप के संबंधों पर गहरा असर पडेगा। इन दोनों अलगाववादी बहुल इलाकों में 2015 में हुए मिंस्क समझौते की बहाली को लेकर बगावत तेज रही है। उस समझौते का एक प्रावधान यह था कि यूक्रेन में सांविधानिक सुधार किया जाएगा और लुहान्स्क व दोनेत्स्क को स्वायत्तता देते हुए सत्ता का विकेंद्रीकरण होगा। मगर अब तक ऐसा नहीं हो सका है।

रूस के इस कदम का अमेरिका, फ्रांस, जर्मनी सहित कई देशों ने विरोध किया है और उस पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने की बात कही है। इससे मॉस्को और कीव में भी तनाव बढ़ गया है, क्योंकि अलगाववादियों पर यूक्रेनी फौज की कार्रवाई के विरोध में रूसी सेना मोर्चा संभाल सकती है। अगर नाटो देशों ने कोई जवाबी सैन्य कार्रवाई की, तो विश्व शांति को इससे व्यापक नुकसान होगा। तब शायद ही कोई देश इस तनाव से बच सकेगा।

तो क्या रूस युद्ध चाहता है? रूसी राष्ट्रपति व्लादिमीर पुतिन इससे इनकार कर रहे हैं। युद्ध रूस के हित में है भी नहीं। भले ही यूक्रेन की सीमा पर उसने अपनी फौज तैनात कर रखी है और परमाणु हथियारों के साथ युद्धाभ्यास किया है। मगर नाटो ने भी यूक्रेन को हथियार मुहैया कराए हैं और अपनी सेनाओं का जमावड़ा सदस्य देशों में धीरे-धीरे बढ़ाया है, जिससे सैन्य तनाव बढ़ा है।

रूस दरअसल, अपनी सुरक्षा को लेकर चिंतित है। वह नाटो का पूर्व की तरफ विस्तार अपने हितों के खिलाफ मानता है। शीत युद्ध की समाप्ति के बाद से, जब से सोवियत संघ का पतन हुआ है, रूस और पश्चिमी देशों के बीच तनातनी रही है। यूरोप का 'सिक्योरिटी आर्किटेक्चर' (सुरक्षा ढांचा) नाटो पर आधारित है, जो एकतरफा रहा है। रूस इसमें बदलाव के लिए कहता रहा है। उसने नाटो से गारंटी मांगी थी कि वह यूक्रेन की तरफ नहीं बढ़ेगा। मगर ऐसा नहीं हुआ। अलबत्ता, नाटो का विस्तार होता गया और वह रूस की सीमा की तरफ बढ़ता गया। रूस कतई नहीं चाहता कि यूक्रेन किसी भी तरह से नाटो के पाले में चला जाए। इसीलिए, रूसी राष्ट्रपति पुतिन ने यह दांव चला है। हालांकि, इसमें खतरा यह है कि जिस तरह से 1914 में ऑस्ट्रिया के उत्तराधिकारी आर्चड्यूक फर्डिनेंड की हत्या से प्रथम विश्व युद्ध की चिनगारी भड़क उठी थी, ठीक उसी तरह कहीं इस जोर-आजमाइश में हल्की सी भी चूक किसी बड़े मानवीय संकट को न्योता न दे जाए।

जाहिर है, अनिश्चितता काफी ज्यादा है और यहां के हालात दिन-प्रतिदिन बदल रहे हैं। रूस की कूटनीति और सैन्य दबाव की रणनीति कितनी सफल होती है, इसका ठीक-ठीक पता तो आने वाले दिनों में चलेगा, लेकिन दुनिया के तमाम देश यही चाहेंगे कि रूस-यूक्रेन की सीमा पर शांति कायम रहे।

इस संकट का भारत पर भी असर होगा। अब तक के घटनाक्रम में रूस और चीन काफी करीब आ चुके हैं। पुतिन पिछले दिनों शीतकालीन ओलंपिक में भाग लेने चीन भी गए थे, जहां दोनों देशों के शासनाध्यक्षों ने साझा घोषणापत्र जारी किया था। ऐसे में, स्वाभाविक है कि चीन इस समय रूस का साथ देगा। मगर इसके साथ चीन यूक्रेन की संप्रभुता भी चाहता होगा। ऐसा इसलिए, क्योंकि बीजिंग के कीव और अन्य मध्य व पूर्वी यूरोपीय देशों के साथ कई तरह के संबंध हैं। अगर रूस की सेना यूक्रेन की सीमा में प्रवेश करती है, तो चीन को खासा आर्थिक व कूटनीतिक नुकसान हो सकता है। हालांकि, वह इस मुद्दे को शांत करने का पक्षधर भी शायद ही है, क्योंकि इस संकट के बने रहने से रूस की निर्भरता

उस पर बढ़ी है। इसका इस्तेमाल वह ताइवान या हिंद प्रशांत क्षेत्र पर अमेरिकी दबाव कम करने और अपना प्रभाव बढ़ाने में कर सकता है। चीन के साथ द्विपक्षीय तनाव को देखते हुए रूस और चीन का एक साथ आना भारत के सामरिक हितों का प्रभावित कर सकता है।

अगर रूस की नजदीकी चीन से बढ़ती है, तो वह भारत से दूर भी छिटक सकता है। वैसे भी, क्वाड (ऑस्ट्रेलिया, जापान, भारत और अमेरिका का संगठन) के गठन के बाद से रूस का भारत पर अविश्वास बढ़ा है। उसकी नजर में नई दिल्ली अब वाशिंगटन के साथ खड़ी है। लिहाजा, रूस का साथ छूटने से कई मुद्दों पर भारत का वैश्विक रुख कमजोर पड़ सकता है। सैन्य सामग्रियों के लिए भारत की रूस पर काफी हद तक निर्भरता तो जगजाहिर ही है।

एक और चिंता यह है कि भारत के अमेरिका और यूरोप के साथ भी प्रगाढ़ रिश्ते हैं। ऐसे में, हमारी दुविधा यह है कि हम किसी एक का पक्ष खुले रूप में नहीं ले सकते। भारत दोनों पक्षों के जायज हितों की तरफदारी कर रहा है। इसलिए नई दिल्ली ने शांतिपूर्ण बातचीत के जरिये इस मसले को सुलझाने की वकालत की है। इतना ही नहीं, 15 हजार के करीब भारतीय छात्र भी यूक्रेन में फंसे हैं, जिनको सुरक्षित निकाला जाना बहुत जरूरी है।

कुल मिलाकर, हमारे लिए अभी उलझन की स्थिति है। हमें न सिर्फ तटस्थ रहना होगा, बल्कि किसी एक के समर्थन से बचना होगा। भारत ने अब तक यही करने की कोशिश की है। वैसे भी, इस तनाव के दो ही हल हैं- या तो दोनों पक्ष बातचीत से मसले को सुलझाएं या फिर दो-दो हाथ करें। यूरोप के नए 'सिक्योरिटी आर्किटेक्चर' में रूस को शामिल करने की मांग जायज है। इस पर विचार होना ही चाहिए। फिलहाल, पश्चिमी देश रूस पर आर्थिक प्रतिबंध लगाने की चेष्टा कर सकते हैं, पर इसका रूस पर कितना असर होगा, यह कहना मुश्किल है। यूरोप अब भी रूस से आने वाली गैस पर बहुत हद तक निर्भर है। प्रतिबंध लगाने से यूरोप में गैस संकट पैदा हो सकता है। लिहाजा, प्रतिबंधों की राजनीति कोई अधिक सफल नहीं होने वाली। अच्छा यही होगा, और जैसा भारत ने भी कहा है, दोनों पक्ष बातचीत के जरिये कोई हल निकालें।